प्रवचन नं. २९९, श्लोक-१५१, १५२ शनिवार, भाद्र शुक्ल १०
दिनाङ्क ०१-०९-१९७९

हिन्दी चलेगा। हिन्दी भाई आये हैं। यह दशलक्षणी पर्व का छठवाँ दिन है। सुगन्ध दसमी कहते हैं न? मूल तो संयम है। छठवाँ संयम धर्म क्या है, वह कहते हैं। जिसका चित्त जीवों की दया से भींगा हुआ है। संयम अलौकिक चीज़ है, भगवान! आहा! और ईर्या, भाषा, ऐषणा, ऐसी पाँच समिति को पावन करनेवाला है, ऐसे मुनि के षट्कायिक जीवों की हिंसा का, इन्द्रियों के विषयों का त्याग है, उसे ही गणधर आदि देव संयम कहते हैं।

अब संयम क्या चीज़ है? आचार्य कहते हैं कि प्रथम तो संसाररूपी गहन वन में भ्रमण करते हुए, अनादि चौरासी लाख योनियों में अनन्त-अनन्त अवतार किये। आहा! वह भ्रमण करते हुए प्राणियों को मनुष्य होना ही अत्यन्त कठिन है। आहाहा! अनादि-अनन्त संसार, नरक, निगोद के ऐसे अनन्त भव किये, उसमें अनन्त काल में मनुष्यपना मिलना कठिन है। है? परन्तु किसी कारण से मनुष्यजन्म प्राप्त भी हो जाए तो उत्तम जाति मिलना, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि में अवतार होना, वह भी दुर्लभ है। किसी प्रबल उदय के योग से उत्तम जाति भी मिल जाए, अरिहन्त भगवान के वचनों का श्रवण होना, त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमेश्वर की वाणी श्रवण होना, वह बड़ा दुर्लभ है। आहा! वह भी मिला, कदाचित् उनका श्रवण भी स्वाभाविकरूप से प्राप्त हो जाए तो संसार में अधिक जीवन मिलता नहीं। अधिक जीवन भी मिले तो सम्यग्दर्शन... आयुष्य लम्बा मिले, वह भी दुर्लभ है और उसमें सम्यग्दर्शन दुर्लभ है, प्रभु! आहाहा!

आत्मा राग से भिन्न पड़कर, निज आत्मा का अनुभव करके प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन महादुर्लभ है। समझ में आया? संयम तो बाद में कहेंगे। अभी तो सम्यग्दर्शन दुर्लभ है। आहाहा! भगवान आत्मा ध्रुव सच्चिदानन्द प्रभु, पूर्ण आनन्दकन्द आत्मा के अन्तर सन्मुख होकर उसकी प्रतीति और ज्ञान अन्तर में होना और उसमें आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसी बात है, प्रभु! तेरी बलिहारी है अन्दर, भाई! तेरा अन्तर स्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सच्चिदानन्द प्रभु है। उसका सम्यग्दर्शन अभी, हों! धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म की पहली श्रेणी, वह सम्यग्दर्शन।

आयुष्य लम्बा मिला, निरोगता हुई, मनुष्यपना मिला, सुनने को मिला परन्तु सम्यग्दर्शन दुर्लभ चीज़ है। अनन्त में परिभ्रमण करते हुए 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार...' दिगम्बर मुनि होकर अट्ठाईस मूलगुण मिले, हजारों रानियों का त्याग किया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो'। ग्रीवा के स्थान पर ग्रैवेयक है। पुरुषाकाररूप से यह ब्रह्माण्ड है न? चौदह राजूलोक पुरुषाकार है। ग्रीवा में-ग्रीवा के स्थान में यह नौ ग्रैवेयक है। वहाँ अनन्त बार उत्पन्न हुआ। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पालकर शुक्ल लेश्या से (वहाँ गया)। परन्तु सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया। आहाहा! 'आत्मज्ञान बिना लेश सुख न पाया।' आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान। आहाहा!

श्रेणिक राजा गृहस्थाश्रम में राज्य में थे, तो भी क्षायिक सम्यक्त्व था। आहा! उसमें तीर्थंकरगोत्र बाँधते थे, परन्तु नरक का आयुष्य बँध गया था, इसलिए नरक में गये हैं परन्तु है क्षायिक सम्यक्त्व। आहाहा! और वहाँ भी समय-समय तीर्थंकर गोत्र का बन्ध करते हैं। नरक में भी। यह सम्यग्दर्शन का प्रताप है। यह सम्यग्दर्शन, भाई! कोई अलौकिक चीज़ है। लोग बाहर से मानते हैं कि हम देव-शास्त्र-गुरु को मानते हैं, नव तत्त्व के भेद को मानते हैं, यह सम्यग्दर्शन। यह सम्यग्दर्शन नहीं है।

यह यहाँ कहते हैं, आहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होना अति कठिन है। स्वस्वरूप परमात्मस्वरूप अन्दर, जिनचन्द्र भगवान जिनचन्द्र है। आहाहा! वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा अन्दर विराजता है। उसके सन्मुख होकर, पर से विमुख होकर, निमित्त से, संयोग से, राग से, पर्याय से भी विमुख होकर... आहाहा! अन्तर परमानन्दस्वरूप प्रभु के सन्मुख होकर जो प्रतीति-सम्यग्दर्शन, अनुभव होना, वह अपूर्व चीज़ है। वह अनन्त काल में प्राप्त नहीं किया। बाहर के क्रियाकाण्ड किये; दया, व्रत, तप, भक्ति—वह तो सब पुण्य है, राग है। आहाहा! वह कोई धर्म नहीं, धर्म का कारण भी नहीं। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अंतरस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन, परमानन्द की मूर्ति प्रभु है, अन्दर ऐसा अनादि से है। उसके सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति (करना)। कल आया था, अन्तिम कहा था। लालचन्दभाई! अन्तिम बीसवाँ बोल। प्रवचनसार, अलिंगग्रहण का

(बीसवाँ बोल)। आहा! भगवान! तूने जो ध्रुवस्वरूप भगवान, ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उस पर यदि तेरी दृष्टि हुई तो पर्याय में आनन्द आये बिना रहे नहीं। आहाहा! यह अतीन्द्रिय आनन्द की बात है, हों! इन्द्रिय के विषय तो दु:ख है, राग है, भिखारी, बड़ा भिखारी है। पर में से मुझे सुख मिलेगा, इन्द्रियों से, विषयों से (मुझे सुख मिलेगा, ऐसा माननेवाले) भिखारी हैं। भगवान बादशाह अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु, आहाहा! उसके सन्मुख जो हुआ, ध्रुव को ध्यान में लिया तो पर्याय में आनन्द आये बिना रहे नहीं। इसलिए उस ध्रुव के लक्ष्य का फल आनन्द है। आहाहा! अन्तिम बोल यह पढ़ा। आहाहा! क्या कहा? प्रभु!

आत्मा में जो सम्यग्दर्शन होता है, ध्रुव भगवान नित्यानन्द प्रभु ध्रुव, उस ध्रुव पर जब दृष्टि जाती है, तब पर्याय में आनन्द आये बिना नहीं रहता। इसलिए वहाँ बीसवें बोल में कहा कि आनन्द का अनुभव, वह आत्मा है। जो अनादि से राग और द्वेष का अनुभव है, वह तो दु:ख का अनुभव है। आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम का अनुभव, वह राग है और दु:ख है। अरर! प्रभु! मार्ग अलग है, भाई! तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव का पुकार है.. आहाहा! कि जिसे ध्रुव ध्यान में आया, जिसकी दृष्टि ध्रुव पर आयी, उसकी पर्याय में आनन्द आये बिना नहीं रहता; इसलिए आनन्द, वह आत्मा है। आहाहा! राग, वह आत्मा नहीं; वह तो अनात्मा है।

यह यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन, आहाहा! छठवाँ (धर्म) है न? यहाँ आया है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होना अति कठिन है। यदि किसी पुण्य के योग से, आहाहा! अखण्ड निर्मल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति भी हो जाए, अन्तर के अवलम्बन से... आहाहा! यदि (सम्यग्दर्शन भी प्राप्त हो जाए) तो संयमधर्म के बिना, संयम बिना मुक्ति नहीं है। अकेले सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान से मुक्ति नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् संयम बिना स्वर्ग और मोक्षरूपी फल देनेवाला नहीं हो सकता। इसलिए इन सबकी अपेक्षा से संयम अति प्रशंसनीय है। परन्तु वह संयम किसे कहते हैं, प्रभु! बाहर का त्याग किया, वह संयम नहीं। आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा का अन्दर में शुद्ध अनुभव होकर, आनन्द का अनुभव होकर सम्यग्दर्शन हुआ, पश्चात् स्वरूप में लीनता करना। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के भोजन करना, आहाहा! ऐसी बात है। उसका नाम भगवान संयम कहते हैं। संयम शब्द पड़ा है न? सं+यम। सं अर्थात्

सम्यग्दर्शनपूर्वक, अन्तर के अनुभवपूर्वक। सं-यम। यम अर्थात् अन्तर लीन होना। आहाहा! ऐसे संयम धर्म का, सुगन्ध दसमी का आज छठवाँ दिन है। दुर्लभ चीज़ है।

अब अपना चलता अधिकार। समयसार १५१ वाँ श्लोक चला है, उसका भावार्थ। १५१ जो कलश है न, कलश? उसका भावार्थ। है? **भावार्थ : ज्ञानी को...** आहाहा! जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, स्वाद आया—ऐसे धर्मी को, समकिती को, ज्ञानी को **कर्म तो करना ही उचित नहीं है।** किसी प्रकार से पर के कार्य और राग करना, वह उचित नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! धर्मी को, धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का अन्तर में सम्यग्दर्शन में आनन्द का स्वाद आया हो। आहाहा! उस धर्मी को। धर्मी अर्थात् द्रव्यस्वभाव जो त्रिकाल है, उसकी अनुभव में दृष्टि हुई, वह ज्ञानी, वह धर्मी है। धर्मी अर्थात् बाह्य का क्रियाकाण्ड करे, और पूजा-भक्ति (करे), इसलिए धर्मी है-ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है, भगवान! नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार (गया)। सम्यग्दर्शन बिना ऐसा क्रियाकाण्ड किया कि चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे। परन्तु सम्यग्दर्शन बिना वह निरर्थक है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **ज्ञानी को...** जिसे ज्ञानस्वरूप भगवान का ज्ञान हुआ। ज्ञानस्वरूप भगवान, ज्ञान का पुंज... ज्ञान का पुंज, ज्ञान का गंज, ज्ञान का पिण्ड, उसका जिसे सन्मुख होकर ज्ञान हुआ। आहाहा! शास्त्रज्ञान आदि हो, वह कुछ नहीं। आहाहा! शास्त्रज्ञान होना, वह कुछ ज्ञान नहीं है। अन्तर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, वह ज्ञायकभाव से भरपूर प्रभु, आहा! बातें बहुत कठिन, भाई! उस ज्ञायकभाव के अन्तर में सन्मुख होकर, प्रतीति करके आनन्द का स्वाद अन्दर आना, इसका नाम ज्ञानी और धर्मी कहा जाता है।

ज्ञानी को कर्म तो करना ही उचित नहीं है। उसे तो राग कि, पर का कार्य तो कर सकता नहीं, परन्तु राग का कार्य भी करना उसे उचित नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहा! आचार्य तो भगवानरूप से बुलाते हैं। समयसार ७२ गाथा। भगवान आत्मा। आहाहा! श्रोताओं को पुकार करके आचार्य ऐसा बुलाते हैं, भगवान आत्मा। यह पुण्य और पाप के (भाव) अशुचि-मैल है, उनसे भगवान भिन्न है। आहाहा! ये पुण्य और पाप के जो भाव हैं, दया-दानादि, वे जड़ हैं। उनमें भगवान चैतन्य का अंश नहीं है। अरर्र! ऐसी

बातें भारी कठिन पड़े। शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे जड़ हैं। जड़ का अर्थ (यह कि) उनमें चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव का अंश नहीं है। राग है, वह तो अन्ध है। आहाहा! भगवान आत्मा तो प्रकाश की मूर्ति है। उस प्रकाश की मूर्ति का भान हुआ, उसे राग जो अन्धकार, वह करना उचित नहीं है। आहाहा! भारी बात, भाई!

यदि परद्रव्य जानकर भी उसे भोगे... रागादि और पर स्त्री आदि को परद्रव्य जानकर भोगने का भाव करे **तो यह योग्य नहीं है।** वह धर्मी को योग्य नहीं है। आहाहा! भोगनेयोग्य तो भगवान आत्मा है। उसे छोड़कर धर्मी नाम धराकर पर, स्त्री आदि और राग के भोग में सुख माने तो वह धर्मी नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन काम है।

जिसे भगवान आत्मा में आनन्दस्वरूप का भान (हुआ), आनन्द का पुंज प्रभु है, ऐसा अनुभव हुआ, उसे राग में मजा और बाहर में मजा नहीं दिखता। आहाहा! इन्द्र है, शकेन्द्र है, समकिती है, अनुभवी है, करोड़ों अप्सरायें हैं परन्तु (उनमें) सुखबुद्धि नहीं है। राग आता है तो काल नाग देखते हैं। अरेरे! हम यह चीज़ कहाँ (है)? समझ में आया? निर्जरा का अधिकार है न? जिसे आत्मा का ज्ञान और अनुभव हुआ, उसे राग की मिठास से राग करना होता नहीं। पर की क्रिया, भोग की तो होती नहीं, परन्तु राग करना, वह भी उसकी इच्छा की, अभिलाषा से राग का करना है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

परद्रव्य के भोक्ता को तो जगत में चोर कहा जाता है,... आहाहा! शरीर, स्त्री, पैसा-लक्ष्मी को भोगना, वह तो चोर है। अपनी चीज़ को छोड़कर परचीज़ को भोगना, वह तो चोर है। अरेरे! यह क्या परन्तु? समझ में आया? **अन्यायी कहा जाता है।** आहाहा! अपना निज द्रव्य को छोड़कर परद्रव्य को भोगना, वह अन्याय और चोर कहने में आता है। आहाहा! अन्दर आचार्यों की भाषा तो देखो! सन्त-दिगम्बर मुनि आत्मा के ध्यान में मस्त हैं। विकल्प आया और टीका हो गयी। उस विकल्प के भी कर्ता नहीं। आहा! टीका की अक्षर की अवस्था है, उसके तो कर्ता नहीं; वह तो जड़ की पर्याय है। आहाहा! कहते हैं, धर्मी को परद्रव्य का भोगना वास्तव में अन्याय और चोर है।

और जो उपभोग से बन्ध नहीं कहा... सिद्धान्त में कहा है कि ज्ञानी को उपभोग से बन्ध नहीं है, **तो ज्ञानी इच्छा के बिना ही पर की जबरदस्ती से उदय में आये हुए**

को... आहाहा! स्वयं की भावना नहीं है, परन्तु राग आया, कर्म के निमित्त के वश होकर राग आया। आहा! उस **पर की जबरदस्ती से उदय में आये हुए को भोगता है...** आहा! गधे के ऊपर बैठावे और फिर चलावे तो यहाँ बैठनेवाले को उसमें प्रसन्नता है? समझ में आया? दिल्ली में या दूसरे किसी गाँव में ऐसा बना था। लड़का कन्या से विवाह करने गया, ऐसे विवाह प्रसंग में कन्या को आने का समय हुआ तो उसने माँग की कि इतने पैसे, इतना अमुक, इतना-इतना (चाहिए) और (सामने) गरीब व्यक्ति साधारण घर। अब इतनी माँग की तो गाँव के युवक लोग गधा लाये, गधा (लाये) और उसे (वर को) बैठाकर गाँव में घुमाया। गधे जैसा, उसके पास इतने पैसे नहीं और तू माँगता है! तो वह गधे पर बैठा, उसमें प्रसन्न होगा? जवान लड़कों ने (ऐसा) किया था। यह बना है। जवान लड़का था, बहुत जोर किया कि इतने पैसे लाओ, इतने गहने लाओ। अब घर सामान्य था, उसमें इतनी माँग (की)। जवानों ने एकत्रित होकर गधे पर बैठाया और गाँव में घुमाया। उसीप्रकार यहाँ आत्मा में अन्दर राग आया। आहाहा! वह गधे पर बैठनेवाला जैसे प्रसन्न नहीं है, वैसे ही (ज्ञानी) राग को करने में प्रसन्न नहीं है। समझ में आया, भाई! मार्ग अलग है। यह तो अलौकिक चीज़ है।

तीर्थंकर जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ महाविदेह में विराजते हैं। परमात्मा सीमन्धरस्वामी। पाँच सौ धनुष की देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। भगवान विराजते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे, वहाँ से यह सन्देश लाये। आहा! स्वयं अनुभवी, समकिती मुनि थे, अन्तर आत्मज्ञानी थे, परन्तु वहाँ गये थे तो विशेष निर्मल ज्ञान हुआ और आकर यह शास्त्र बनाये कि भगवान का यह सन्देश है। यहाँ भी पति या पिता बाहर गये हों और वापस आये हों तो कहे, मेरे लिये क्या लाये? इसी प्रकार भगवान के पास गये थे, तो यहाँ के मनुष्य कहते हैं, प्रभु! वहाँ से आप क्या लाये? कि यह लाया।

जिसे आत्मा का धर्म-दृष्टि प्रगट हुई, वह धर्मी भले गृहस्थाश्रम हो, चक्रवर्ती का राज हो, आहाहा! तथापि वह राग अपनी भावना-विरुद्ध जबरदस्ती से आता है, अपनी कमजोरी से (आता है)। वह **जबरदस्ती से उदय में आये हुए को भोगता है...** है। **वहाँ उसे बन्ध नहीं कहा।** ज्ञानी को राग आता है, उसका स्वामी नहीं, उसकी मिठास नहीं तो उसे बन्ध नहीं कहा? अल्प बन्ध और स्थिति होती है, उसे गौण करके बन्ध नहीं

कहा। आहाहा! चैतन्य भगवान पर आरूढ़ है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अन्दर आत्मा, उस चैतन्य में आरूढ़ है। उसे राग में आरूढ़ होना ठीक नहीं पड़ता, परन्तु पराधीनरूप से आता है, भोगता है, (उसकी) निर्जरा हो जाती है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू!

वीतरागमार्ग, जिनेश्वरमार्ग, ऐसा मार्ग अन्यत्र कहीं है नहीं। वीतराग के अतिरिक्त कहीं है नहीं। सबने कल्पना से धर्म मनवाया है। यह तो तीन लोक के नाथ जिनेश्वर वीतराग परमात्मा ने तीन काल-तीन लोक देखे और जैसा वस्तु का स्वरूप था, वैसा जाना और उसको कहा। प्रभु! जब तक तुझे राग की मिठास का भाव है, तब तक तू मिथ्यादृष्टि है; और राग से भिन्न निज स्वभाव के आनन्द की मिठास आयी तो उसे राग का स्वाद जहर जैसा लगता है। आहाहा! जिसने दूधपाक का स्वाद लिया, उसे कालीजीरी का स्वाद... कालीजीरी होती है न? कड़वी... कड़वी। क्या कहते हैं? कालीजीरी कहते हैं? कड़वी, बारीक (होती है) उसका स्वाद मीठा नहीं लगता। उसी प्रकार धर्मी जीव, जिसे आत्मा का अनुभव और धर्मदृष्टि हुई है, सम्यग्दर्शन हुआ है। आहाहा! और न हो तो प्रथम यह करना है। समझ में आया?

समकित दृष्टि को, सिद्धान्त में भोग को बन्ध का कारण नहीं कहा। उसका कारण यह है कि उस राग की अन्दर भावना नहीं है। राग तो जबरदस्ती से उदय से आता है, परन्तु उसकी मिठास नहीं, उसकी सुखबुद्धि उसमें नहीं है—राग में सुखबुद्धि नहीं है। आहाहा! **वह स्वयं इच्छा से भोगे...** इच्छा करके (भोगे), 'कामाचारी' आया था न? कलश में 'कामाचारी' (आया था)। इच्छा से भोगे, तब तो मिथ्यादृष्टि है। **स्वयं अपराधी...** है। आहाहा! **और तब उसे बन्ध क्यों न हो?** इच्छा से, मिठास से राग को-विकार को, भोग को भोगे तो उसे मिथ्यात्व का बन्ध क्यों नहीं होगा? आहाहा! समझ में आया? और सम्यग्दृष्टि को तो मिठास है नहीं। निज चैतन्य की मिठास के समक्ष राग की मिठास जहर जैसी दिखती है। काला नाग आवे और जैसे भागे, (वैसा है)। आहाहा! राग है, जब तक वीतराग न हो तो धर्मी को भी राग आता है, परन्तु राग आया तो जहर—काले नाग जैसा दिखता है। अरे! यह जहर, यह क्या! मेरी चीज़ भिन्न है। अतः निज चीज़ की मिठास के समक्ष राग की भावना से-मिठास से भोग नहीं भोगता। आहाहा! ऐसा मार्ग है। १५२। १५१ (श्लोक पूरा) हुआ न? १५२।

कलश - १५२

अब आगे की गाथा का सूचक काव्य कहते हैं:-

(शार्दूलविक्रीडित)

कर्तारं स्वफलेन यत्किल बलात्कर्मैव नो योजयेत्
कुर्वाण: फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मण:।
ज्ञानं सन्स्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनि: ।।१५२।।

श्लोकार्थ : [यत् किल कर्म एव कर्तारं स्वफलेन बलात् नो योजयेत्] कर्म ही उसके कर्ता को अपने फल के साथ बलात् नहीं जोड़ता (कि तू मेरे फल को भोग), [फललिप्सु: एव हि कुर्वाण: कर्मण: यत् फलं प्राप्नोति] *फल की इच्छावाला ही कर्म को करता हुआ कर्म के फल को पाता है; [ज्ञानं सन्] इसलिए ज्ञानरूप रहता हुआ और [तद्-अपास्त-रागरचन:] जिसने कर्म के प्रति राग की रचना दूर की है ऐसा [मुनि:] मुनि, [तत्-फल-परित्याग-एक-शील:] कर्मफल के परित्यागरूप ही एक स्वभाववाला होने से, [कर्म कुर्वाण: अपि हि] कर्म करता हुआ भी [कर्मणा नो बध्यते] कर्म से नहीं बँधता।

भावार्थ : कर्म तो बलात् कर्ता को अपने फल के साथ नहीं जोड़ता किन्तु जो कर्म को करता हुआ उसके फल की इच्छा करता है, वही उसका फल पाता है। इसलिए जो ज्ञानरूप वर्तता है और बिना ही राग के कर्म करता है, वह मुनि कर्म से नहीं बँधता क्योंकि उसे कर्मफल की इच्छा नहीं है।।१५२।।

कलश - १५२ पर प्रवचन

कर्तारं स्वफलेन यत्किल बलात्कर्मैव नो योजयेत्
कुर्वाण: फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मण:।

* कर्म का फल अर्थात् (१) रंजित परिणाम, अथवा (२) सुख (-रंजित परिणाम) को उत्पन्न करनेवाले आगामी भोग।

ज्ञानं सन्स्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः ।।१५२।।

आहाहा! **श्लोकार्थ : [यत् किल कर्म एव कर्तारं स्वफलेन बलात् नो योजयेत्] कर्म ही उसके कर्ता को अपने फल के साथ बलात् नहीं जोड़ता...** आहाहा! कर्म का उदय आया तो उसे बलात् से राग नहीं कराता। अपने पुरुषार्थ की कमी है तो उस कारण से राग होता है, पर से नहीं होता। आहाहा! **(कि तू मेरे फल को भोग),...** ऐसा कर्म नहीं (कहता)। **[फललिप्सुः एव हि कुर्वाणः कर्मणः यत् फलं प्राप्नोति] फल की...** कर्म का फल (अर्थात्) रंजित परिणाम। क्या कहते हैं? जरा सूक्ष्म बात है। राग का रस चढ़ना, राग का रस आना, राग में रंग जाना, यह कर्म का परिणाम है, यह परिणाम ज्ञानी को नहीं होता। आहाहा! कर्म का फल रंजित परिणाम। है नीचे? राग में रँगना, रंजित परिणाम, वह धर्मी को नहीं होता। जिसे आत्मा का रंग चढ़ा, आहाहा! भगवान आत्मा का रंग चढ़ा, उसे राग का रंग नहीं होता। आहाहा! एक म्यान में दो तलवारें नहीं रहती। आहाहा! यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन की बात है, भगवान! सम्यग्दर्शन के पश्चात् संयम तो कोई अलौकिक चीज़ है। आहाहा! यह तो अभी तो सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, आहाहा! और व्रत और तप (करना), वह तो सब अंकरहित शून्य है। आहाहा!

यहाँ तो प्रथम कहते हैं, प्रभु! **फल की इच्छावाला ही कर्म को करता हुआ कर्म के फल को पाता है;...** परन्तु कर्म के फल का अर्थ राग में रंजित हो जाना, राग का रंग चढ़ना। आहाहा! शुभ (-रंजित परिणाम) उत्पन्न करनेवाले आगामी भोग। आहा! मुझे सुख होगा, राग आया तो मुझे सुख हुआ, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहा! उस **फल की इच्छावाला ही कर्म को करता हुआ...** राग करना, वह फल की इच्छा है कि उसका कुछ फल मिले, वैसे फल की इच्छावाले को राग कर्ता कहने में आता है। **कर्म के फल को पाता है; इसलिए ज्ञानरूप रहता हुआ...** आत्मा ज्ञान और आनन्दरूप है, ऐसी दृष्टि सम्यक् हुई तो धर्मी तो ज्ञानरूप रहता हुआ, रागरूप नहीं होता। आहाहा! अरे! ऐसा मार्ग। यह मार्ग वीतराग जैन परमेश्वर ने कहा है। ऐसा अन्यत्र कहीं, दूसरे मार्ग में है ही नहीं। आहाहा! यह प्राप्त करना अलौकिक है, भाई!

कहते हैं, **जिसने कर्म के प्रति राग की रचना दूर की है...** आहाहा! ज्ञान में रहना, ऐसा कहा न? **ज्ञानरूप रहता हुआ...** अर्थात् क्या? शास्त्रज्ञान नहीं। अन्तर ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा; उस ज्ञाता-दृष्टा में रहता हुआ। ऐसी बातें लोगों को महँगी पड़ती है, (इसलिए) फिर लोगों ने बाहर में चढ़ा दिया। मूल चीज़ नहीं और चढ़ा दिया, व्रत करो और अपवास करो और पूजा करो, भक्ति (करो), यह धर्म। यह तो अनन्तबार किया, प्रभु! यह धर्म नहीं, यह तो राग की क्रिया है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो परमात्मस्वरूप, जिसे अन्तर्दृष्टि में—सम्यग्दर्शन में भासित हुआ... ओहो! जिसने निजस्वरूप में प्रवेश किया; अनादि से जो राग में प्रवेश था, वह अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में जिसने प्रवेश किया, वहाँ निवास किया। आहाहा! वह ज्ञानस्वभाव में रहता है; धर्मी राग भाव में नहीं रहते। आहाहा! अब ऐसी बातें महँगी लगे। बापू! मार्ग तो यह है, भाई! दूसरे प्रकार से कहेगा तो ठगा जाएगा। भव चला जाएगा, प्रभु! और फिर ऐसा मनुष्यभव मिलना मुश्किल है, नाथ! आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? आहाहा! मैं तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप, यह ज्ञानस्वभाव, हों! यह ज्ञानस्वभाव (अर्थात्) शास्त्र का ज्ञान नहीं। यहाँ तो ज्ञानस्वभाव पुंज, जैसे शक्कर मिठासस्वरूप है, वैसे भगवान ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान जिसका रूप है, ज्ञान जिसका स्वरूप है, ज्ञान जिसका स्वभाव है, ज्ञान जिसकी शक्ति का सत्व है। सत्व क्यों कहा? सत् जो है, उसका यह ज्ञान सत्व है। आहाहा! अरेरे! इस चीज़ की जिसे दृष्टि हुई तो कहते हैं, ज्ञानी तू ज्ञान में रह। राग में आना नहीं। आहाहा! चौथे गुणस्थान में, हों! सम्यग्दृष्टि! कहते हैं, प्रभु! तू ज्ञानमूर्ति है न, नाथ! तो ज्ञान का तुझे भान हुआ, उसे ज्ञानस्वरूप कहा, वहाँ रह न! आहाहा! ऐसा उपदेश अब। है? मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! इसे ज्ञान में पहले निर्णय करना पड़ेगा या नहीं? कि मार्ग तो यह है। आहाहा! इसके बिना जन्म-मरण का उद्धार नहीं होगा, प्रभु! आहा!

यहाँ कहते हैं, **इसलिए...** इसलिए क्या? ज्ञायकस्वरूप भगवान आनन्द प्रभु की दृष्टि हुई तो उसे भावना से राग करना, वह है नहीं, तो राग का करना है नहीं तो कहाँ रहना? ज्ञान में रह न! तेरा स्वरूपधाम पड़ा है न! 'स्वयं ज्योति सुखधाम' भगवान स्वयं ज्योति,

चैतन्यज्योति, चैतन्य के पूर के नूर के प्रकाश का प्रवाह पूरा पड़ा है, ध्रुव। आहा! सूक्ष्म बातें, भगवान! आहाहा! वहाँ रह न, प्रभु! तूने तेरा धाम देखा है न! आहाहा! ज्ञानस्वरूप हूँ; आनन्दस्वरूप हूँ, अरे! वीतरागस्वरूप हूँ। आत्मा तो अनादि से वीतरागस्वरूप है। आहाहा! ऐसे वीतरागस्वरूप की तुझे दृष्टि होकर समकित हुआ तो अब वहाँ रह न! राग आवे, वहाँ खिसक मत जा। तुझे राग की मिठास नहीं होनी चाहिए। आहाहा! ज्ञान में रहना। यदि खस गया। खस गया को क्या कहते हैं हिन्दी में? हट गया।

हम तो गुजराती है न, सब हिन्दी नहीं आती। थोड़ी-थोड़ी आती है। आहाहा! यहाँ तो शरीर को निब्बे वर्ष हुए, निब्बे। सौ में दस कम। हम तो गुजरात में हैं, यहाँ के हैं। यहाँ से ग्यारह मील उमराला है, वहाँ का जन्म है। हमारी दुकान 'पालेज' (में है)। आये हैं न हमारे? 'हसु' और 'नटु'। भरूच और वडोदरा के बीच पालेज है। वहाँ दुकान थी। दुकान थी, वहाँ नौ वर्ष रहे। है?

मुमुक्षु : अब दुकान कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब दुकान यह है। पाँच वर्ष दुकान चलायी थी। सत्रह वर्ष से बाईस। सत्रह कहते हैं, क्या कहते है? एक और सात। सत्रह वर्ष से बाईस, पाँच वर्ष दुकान चलायी। दुकान है, ये लड़के आये हैं। बड़ी दुकान है, बड़ी लाखों की आमदनी है अभी। धूल की... पाप की दुकान है वह। आहा! आहाहा!

कहते हैं कि यदि तुझे आत्मज्ञान और आत्मा का भान हुआ हो, प्रभु! तो तू आत्मा के ज्ञान में रह। तू राग में आकर राग की मिठास न कर। आहाहा! ऐसा मार्ग। वीतराग (का)। ज्ञान में बस। **ज्ञानरूप रहता हुआ...** है न? ज्ञाता-दृष्टारूप रहता हुआ। आहाहा! क्योंकि तेरी चीज यह जगतचक्षु है। तू जो जगतचक्षु—ज्ञानस्वरूपी है, तो पर को और स्व को जानने की ताकतवाला तू है। पर को भोगना, वह तेरी चीज़ में है ही नहीं। आहाहा! और पर को करना, वह भी तेरी चीज़ में है नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन में, चौथे गुणस्थान में, आहा! कहते हैं कि प्रभु! तुझे कर्म के निमित्त के वश होकर निर्बलता से, बलजोरी से कोई राग आवे तो राग का भोग न लेकर... राग के भोग का अर्थ 'मुझे राग का भोग है'—ऐसा नहीं मानना। तुझे तो, प्रभु! ज्ञान का भोग है न! आहाहा! ऐसी चीज़ लोगों को सूक्ष्म पड़ती है। लोगों को बाहर में चढ़ा दिया। आहा! मूल चीज़ एकड़ा नहीं होता और

शून्य चढ़ा दिये। आहा! यह तो सम्यग्दर्शन तीन लोक के नाथ किसे कहते हैं, उसकी यहाँ तो पहली बात है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए ज्ञानरूप रहता हुआ... अर्थात? आत्मा ज्ञाता-दृष्टा रहता है, ऐसा तुझे भान तो हुआ, तब तो सम्यग्दृष्टि कहने में आता है, तब ज्ञानी कहने में आता है। भले गृहस्थाश्रम में हो, परन्तु हे ज्ञानी! तू ज्ञान में रह। राग आता है, उसके अन्दर मत चला जा। राग की मिठास में राग में प्रवेश नहीं कर। आहाहा! ऐसी बातें हैं। **[तद्-अपास्त-रागरचनः] जिसने कर्म के प्रति राग की रचना दूर की है...** आहाहा! ज्ञानस्वरूपी भगवान.. एक भजन में ऐसा आता है—'प्रभु तुम जाणग रीति, सहु जग देखता हो लाल...' हे नाथ! सर्वज्ञ परमेश्वर! आप जगत को देखते हो। 'निज सत्ताए शुद्ध सहुने पेखता हो लाल...' प्रभु! हमारी सत्ता-हमारा अस्तित्व, उसे आप शुद्ध देखते हो। यह भगवान अन्दर है। 'प्रभु तुम जाणग रीति...' हे नाथ! तुम्हारे ज्ञान में हमारी चीज़ आती है, तो हमारी चीज़ को आप कैसी देखते हो? प्रभु! आप तो हमारी चीज़ को शुद्ध देखते हो। राग और पुण्य, वह हमारा है नहीं, ऐसा आप देखते हो, आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें, बापू! आहा! सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज़ है और इसके बिना सब निरर्थक है। अंक के बिना शून्य, लाख शून्य लिखे और अंक न हो तो शून्य की कोई कीमत नहीं है और एक एकड़ा आवे और फिर शून्य चढ़े तो दस हो जाए। इसी तरह सम्यग्दर्शन के पश्चात् यदि स्थिरता आ जाए तो संग हो जाए। आहाहा! समझ में आया?

[तद्-अपास्त-रागरचनः] जिसने कर्म के प्रति राग की रचना दूर की है... आहाहा! राग आता है, परन्तु राग रचूँ, इससे दूर हो गया है। आहाहा! समझ में आया? धर्मी राग की रचना नहीं करते, वे धर्मी तो ज्ञान की रचना करते हैं। आहाहा! क्योंकि आत्मा में एक वीर्यगुण पड़ा है। आत्मा में वीर्य नाम का गुण है। यह वीर्य रेत है, (जिससे) पुत्री-पुत्र हो, वह तो जड़ है। आत्मा में एक वीर्य नाम का स्वभाव-गुण है। उस वीर्य का धारक भगवान, उसकी जिसे दृष्टि हुई और सम्यग्दर्शन हुआ तो उसका वीर्य रचना निर्मल पर्याय की रचना करता है। वह राग की रचना नहीं करता। आहाहा!

पुण्य-पाप के अधिकार में आया है न? कि जो राग में रहते हैं और राग से हटकर

अन्दर नहीं जाते, वे नपुंसक-पावैया-हीजड़ा है। क्या कहा?—कि जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि राग है, उसमें टिका है और उसमें से हटता नहीं, इस ओर आता नहीं, वह नपुंसक है, क्योंकि राग में आत्मा की प्रजा नहीं होती। आहाहा! जैसे नपुंसक को वीर्य नहीं है, नपुंसक को प्रजा नहीं होती। हीजड़ा होता है न? पावैया। वैसे भगवान त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं (कि) तू अन्दर राग से भिन्नता नहीं करता तो नपुंसक है; पुरुष नहीं। आहाहा! पुरुष तो उसे कहते हैं (कि) अपने चैतन्यस्वभाव में सोता, रहता (है, वह) पुरुष। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में आया है। अपने चैतन्यस्वभाव में सोवे, रहे, वह चैतन्य है। राग में सोवे, वह तो अचेतन-जड़ है। आहाहा! ऐसा मार्ग। है?

जिसने कर्म के प्रति... अर्थात् राग। **राग की रचना दूर की है...** आहाहा! स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन में वीर्य नाम का एक गुण है, जो सम्यक् दृष्टि में जब पूरे द्रव्य की दृष्टि हुई तो वीर्यगुण की रचना निर्मल परिणति करे, वह उसकी रचना है। राग की रचना करे, वह वीर्य नहीं। वह स्व का वीर्य नहीं। आहाहा! स्व का बल नहीं। आहाहा! अरेरे! ऐसा अवसर! यह कहा न? भाषा संक्षिप्त है, परन्तु अन्दर भाव बहुत भरे हैं। आहा! एक 'जगत' शब्द हो तो 'जगत' शब्द तीन अक्षर का है। ज-ग-त, कानोमात्र बिना। तो भी जगत अर्थात् चौदह ब्रह्माण्ड आ जाए। अनन्त सिद्ध (आ जाए)। आहा!

इसी तरह यहाँ कहते हैं, प्रभु! तुझे निर्जरा कब होगी?—कि जब ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव हुआ, वहाँ रह; वहाँ का वहाँ प्रयत्न को स्थाप। राग के भाव में तेरा प्रयत्न न ले जा, उसकी रचना करने में तेरा वीर्य नहीं है। आहाहा! तेरा वीर्य तो प्रभु! तुझे द्रव्यदृष्टि हुई, द्रव्य का ज्ञान हुआ, द्रव्य का अनुभव हुआ तो उसका वीर्य जो है, वह तो शुद्ध स्वरूप की रचना करे, वह वीर्य। राग की रचना करे, वह तेरा कार्य नहीं। आहाहा! राग आता है, धर्मी को दया, दान, व्रत, पूजा का भाव आता है, परन्तु उसकी रचना—यह मेरा कार्य है—ऐसा वह नहीं मानता। आहाहा! हेयबुद्धि से जानता है। क्या कहा? इस शुभभाव को हेयबुद्धि से जानता है। मैं रचूँ और मेरा कार्य है, (ऐसा नहीं)। आहा! भाई! यह तो वीतराग का मार्ग और वह भी जन्म-मरण रहित, चौरासी के अवतार रहित होने का सम्यग्दर्शन, वह कोई अलौकिक मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

'**अपास्त-रागरचनः**' राग की रचना का उसने नाश किया है। '**अपास्त**' है न?

आहाहा! '**अपास्त-रागरचनः**' सम्यग्दृष्टि जीव ने तो आनन्दस्वरूप भगवान को देखा है। वह आत्मा के आनन्द से विरुद्ध राग की रचना से तो वह दूर है। वह तो आत्मा की शान्ति और आनन्द की रचना में स्थित है। आहाहा! ऐसा मार्ग अब। [**ज्ञानं सन्**] है न? [**ज्ञानं सन्**] ज्ञान में रह। चैतन्यस्वरूप भगवान ज्ञानस्वरूप में रहे तो सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। राग में आ जाए और राग मेरी चीज़ है (-ऐसा यदि माने तो) मिथ्यादृष्टि है। आहा! क्योंकि भगवान आत्मा में अनन्त गुण हैं। वह प्रत्येक गुण पवित्र है। अनन्तानन्त गुण हैं, वे पवित्र हैं, तो उस पवित्रता का जो स्वामी हुआ, वह अपवित्र ऐसे राग का स्वामी कैसे होगा? जो पवित्र की रचना करनेवाला सम्यग्दर्शन हुआ... आहाहा! वह अपवित्र ऐसे राग की रचना से दूर है। '**अपास्त**' आहाहा! क्या सन्तों की वाणी!

जाग रे जाग नाथ! तू चैतन्यमूर्ति प्रभु है न! ऐसा कहते हैं। राग में सो रहा है, वह आत्मा में जागता है। राग में सोता है अर्थात् राग का स्वामी नहीं होता, वह आत्मा का स्वामी होता है। आहाहा! और जो आत्मा में जागृत होकर सोता है, वह राग में सोता है। राग मेरा नहीं। आहाहा! जैसे शरीर अपना नहीं, वैसे राग भी अपना नहीं। राग तो आस्रवतत्त्व है। दया, दान, पुण्य, आस्रवतत्त्व है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, वह पाप आस्रवतत्त्व है, तो वह तत्त्व ज्ञायकतत्त्व से तो भिन्न है। नहीं तो नौ नाम कैसे पड़े? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। नव तत्त्व है न? नौ (नाम) कैसे पड़े? आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब। बापू! तेरे घर की बातें अलग प्रकार है, भाई! आहाहा!

यह व्रत का विकल्प उठे तो भी कहते हैं, वहाँ उस रचना की मिठास में नहीं जाना। वह तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! भगवान की भक्ति का भाव आता है, परन्तु उसकी रचना में वह मेरा कार्य है, ऐसे नहीं जाना। आहाहा! श्लोक में बहुत गम्भीरता भरी है। निर्जरा है न, निर्जरा। आहाहा! **जिसने कर्म के प्रति...** अर्थात् राग का कार्य। **राग की रचना दूर की है, ऐसा मुनिः...** मुनि की प्रधानता से कथन है। बाकी सम्यग्दृष्टि (भी गौणरूप से आ जाता है)। कलश टीकाकार तो जहाँ मुनि (शब्द) आवे, वहाँ समकिती ही (अर्थ) करते हैं। यह कलश टीका। कितना है यह? १५२। यह १५२, लो! मुनि, इन्होंने अर्थ किया है, भाई! राजमल्ल टीकाकार हैं। शुद्धस्वरूप अनुभव में विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव। यह कलश टीका है। 'राजमल्ल जिनधर्मी, जिनधर्म का मर्मी।' बनारसीदास कहते हैं,

बनारसीदास, समयसार नाटक के रचयिता। उन्होंने लिखा है। मुनि की व्याख्या की है। शुद्धस्वरूप अनुभवे। शुद्धस्वरूप अनुभव में बिराजमान, आहाहा! ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव। यह १५२ श्लोक का अर्थ है। बड़ा पूरा भरा है। सब देखा है। आहाहा! क्या कहा?

यदि तुझे आत्मा का ज्ञान हुआ हो, आत्मा का ज्ञान, सम्यग्दर्शन हुआ। (यदि) न हुआ तो राग में एकता है, वह तो अनादि काल से है। वह तो मिथ्यात्वभाव है और संसार में भटकने का भाव है, परन्तु तुझे राग से भिन्न ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा का यदि भान हुआ हो, सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञान हुआ, ज्ञान का ज्ञान हुआ, ज्ञानी का ज्ञान हुआ, आत्मा का ज्ञान हुआ... आहा! तो अब वहाँ रह न! वह तेरा धाम है, तेरा स्थल है। आहाहा! समझ में आया? आहा!

पहले एक बार नहीं कहा था? नाटक में आता था। उसे यह खबर न हो। ऐई! हसमुख! तेरा जन्म कहाँ था (उस समय)। (संवत्) १९६४ के वर्ष की बात है। १९६४ में अठारह वर्ष की उम्र थी। १९४६ का जन्म है। १८ वर्ष की उम्र। माल लेने वडोदरा गये थे। माल लेने जाता न, मुम्बई, सूरत, सर्वत्र जाते। तो वडोदरा माल लेने गये थे। अठारह वर्ष की उम्र की बात है। ७२ वर्ष पहले की बात है। वह अनुसूया का नाटक था। भरूच के किनारे नर्मदा नदी है न? वह नर्मदा और अनुसूया दो बहिनें थीं। उनका बड़ा नाटक था। दिन में माल लिया और रात्रि में गये। अनुसूया का नाटक देखते। उस महिला को पुत्र नहीं था, वह महिला स्वर्ग में जाती थी तो स्वर्ग में ना किया। उन लोगों में है न? 'अपुत्रस्य गतिनास्ति।' पुत्र नहीं हो, उसे गति नहीं होती। यह उन लोगों का—वेद का। वहाँ नाटम में ऐसा था। महिला कहे—मुझे करना क्या? नीचे हो, उसे वर। ब्राह्मण से विवाह किया। उसके हुआ लड़का। लड़के को झुलाती थी। आहाहा! उस दिन की बात याद है। ७२ वर्ष। सत्तर और दो।

बेटा! तू निर्विकल्प है। प्रभु! नाटक में ऐसा करते थे। शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि। प्रभु! तू शुद्ध चैतन्यघन है। बुद्धोऽसि-ज्ञानस्वरूप है। ऐसा कहती थी। लो! नाटक में ऐसा करते थे। यहाँ तो अभी सम्प्रदाय में यह बात रही नहीं। बाहर करो, यह करो, यह करो, यह करो... ऐई! कान्तिभाई! सेठ है न वहाँ? परन्तु अभी तो छोड़कर आये हैं। बराबर पड़ाव डाला है।

मुमुक्षु : सुनने को कहाँ मिलता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू! क्या कहें ? भाई! अरे! अन्यत्र नहीं है, ऐसा कहना, लज्जा आवे ऐसा है। आहाहा! मार्ग तो यह है।

कहते हैं कि, प्रभु! तूने तेरी चीज़ को जाना हो और तेरी चीज़ आनन्द का तुझे अनुभव हुआ, तुझे सम्यग्दर्शन हुआ और सम्यग्दर्शन के साथ उसका ज्ञान भी हुआ तो, प्रभु! अब तू ज्ञान में रहना, हों! वहाँ से निकलकर राग की रचना में जाना नहीं। राग आयेगा, परन्तु राग की मिठास की रचना में जाना नहीं। आहाहा! चेतनजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

उस समय तो बारह आने का टिकिट लिया था और बारह आने की पुस्तक (ली थी)। पहले से मेरी आदत कि भाई! तुम क्या कहते हो, यह समझे बिना हमें सुनायी नहीं देता नाटक में, तो तुम्हारी बारह आने की पुस्तक लाओ। तुम क्या बोलते हो, (यह खबर पड़े)। (संवत्) १९६४ की बात है। ७२ वर्ष पहले। (अभी) ९० हुए। अठारह वर्ष की उम्र। उसमें (नाटक में) ऐसा बोले, बेटा! भगवान आत्मा! तू तो शुद्ध है न, नाथ! बुद्धोऽसि! तू ज्ञान का पिण्ड है, राग तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! ऐ! अन्यमति के नाटक में ऐसा दिखाते। यहाँ तो सम्प्रदाय में उसे कहने जाए कि तू शुद्ध-बुद्ध है, राग तेरा नहीं; (तो कहे) अरे! यह तो एकान्त हो गया।

मुमुक्षु : वह ब्राह्मण का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात। आहाहा! उस समय बाई बोलती थी। अरे! भाई! आत्मा तो भगवान ही है। परन्तु भान करे तो।

(समयसार) ७२ गाथा में आया, भगवान आत्मा! ऐसा आचार्य ने कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य। यह कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य। भगवान आत्मा! पुण्य और पाप अशुचि है, पुण्य और पाप के भाव मैल है। प्रभु! तू तो ज्ञान का सागर है न! निर्मल ज्ञान। आहाहा! ऐसे भेद बताया। समय हो गया। आहा! यहाँ तो यह कहना है कि ज्ञान में रह। यदि तुझे आत्मा का भान हुआ है तो जो चीज़ है, उसमें दृष्टि रख। राग की रचना में नहीं जा। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)